Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
Impact Factor 4.94
ISSN No. 2456-1665

फांस : भारतीय किसानी सभ्यता की दर्दनाक त्रासदी

डॉ. रमेश माणिकराव शिंदे
सहयोगी प्राध्यापक तथा विभागाध्यक्ष
हिंदी विभाग,
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय,
अंबाजोगाई, जि. बीड

भारत की पहचान किसानी सभ्यता से जुड़ी है. वास्तविक रुप से भारत गांव तथा ग्रामीण परिवेश से जुड़ी हुई अस्मिता से है. गांव की सभ्यता, संस्कृति माटी से निर्मित होती है. खेती - खलियान सेजुड़ी हुई ग्रामीण अर्थव्यवस्था अपनी स्वतंत्र पहचान रखती है. इतिहास इस तथ्य का प्रमाण है प्रमाण है कि ग्रामीण जनता का मुख्य व्यवसाय किसानी तथा उससे जुड़ी हुई किसानी जीवन की सभ्यता से रहा है. गांव की निवासी जनता अधिकतर खेती-बाड़ी से अपनी उपजीविका चलाती है या कहे कि भारतीय अर्थव्यवस्था का मूलाधार किसानी सभ्यता ही रही है. वर्तमान में गांव उजड़ रहे हैं, नई पीढ़ी शहर की ओर आकर्षित हो रही है. रोजगार के नए सुअवसर सरकार की गलत नीतियों से महानगर में उपलब्ध हो रहे हैं. समाजीकरण की प्रक्रिया में बदलती हुई पारिवारिक अस्मिता और विभक्त परिवार योजना इसी तथ्य का प्रमाण है कि शहरी सभ्यता का बढ़ता हुआ आकर्षण नई सदी की विशेषता है. बदलती हुई पृष्ठभूमि में अपनी माटी से जुड़ा हुआ किसान, सरकारी उपेक्षा का शिकार बना है. खेत- खलिहान में लहराती हुई फसल को देखकर खुशी और आनंद से झूमने वाला, वही किसान समय की परिक्रमा में अपने जीवन को दांव पर लगाकर फांसी का फंदा गले लगाते हुए मृत्यु को स्वीकारता हुआ जीवन को समाप्त कर रहा है. सरकारी नीतियों से शोषित किसान के प्रति समाज के सभी संवेदना तो जरूर बताते हैं किंतु मदद करने के लिए कोई तैयार नहीं है. उसकी मृत्यु वैश्वीकरण के प्रभाव से निर्मित मीडिया के बाजार में खरीदने और बेचने का समाचार मात्र बन जाता है. उपन्यासकार संजीव महाराष्ट्र के किसानों के प्रति फांस उपन्यास से मात्र संवेदना ही नहीं जताते बल्कि समस्या को उसके मूल से समाज सापेक्ष रूबरू करते हैं.

किसी भी राष्ट्र के उन्नति तथा विकास का मूल आधार वहां की प्राकृतिक संपत्ति हुआ करती है. भारत में इसी प्राकृतिक संपत्ति का स्वामी जोकि किसान संज्ञा से परिचित है. वही उपेक्षा का पात्र बन जाता है; जबकि सरकार की नीति किसान सभ्यता की पक्षधरता से परिपूर्ण होनी चाहिए थी किंतु दुर्भाग्य रहा कि भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल स्रोत किसानी सभ्यता होने पर भी उपेक्षित रहा. इसी संदर्भ में ज्ञानचंद्र गुप्त जी ने कहां है कि "भारतीय जीवन तथा सभ्यता का मूल स्रोत कृषि है और उनका विस्तार ग्राम जीवन से ही परिलक्षित होता है."[1]

किसान किसान की वास्तविक जिंदगी का प्रथम वर्णन उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी ने गोदान उपन्यास के माध्यम से जरूर प्रस्तुत किया है. गोदान स्वतंत्रता पूर्व सन 1936 में लिखित प्रख्यात रचना है हम यह समझ सकते हैं कि आजादी से पूर्व किसान की जिंदगी दर्दनाक हो सकती है किंतु क्या किसान ने स्वतंत्र भारत से अपनी जिंदगी दांव पर लगाने का सपना देखा था कि क्या आजादी से उसके जीवन मान में किसी प्रकार के बदलाव की अपेक्षा नहीं थी.

बदलती हुई स्थिति में वह मात्र उपेक्षित जीवन जीने के लिए मजबूर रहा है. न तो वह अपनी माटी से विभक्त हो सका और न हीं दुनियादारी में अपने आपको डाल सका. चाहते हुए भी अनचाहि मौत का शिकार हो गया. चाहे आधुनिकीकरण हो या उत्तर आधुनिक दौर हो, चाहे सरकारी योजना हो अथवा निजी करण से प्रभावित बाजारवाद हो अनाज की उपज ,जिसके जीवन की मेहनत शोषण हर समय प्रत्येक व्यवस्था से हुआ है. कर्ज के जाल में फसाकर किसान को मजदूर बनने की दर्दनाक पीड़ा का चित्रण गोदान में जरूर हुआ है स्वतंत्रता पूर्व किसान की सच्चाई जरूर प्रेमचंद उत्तर प्रदेश के सिमरी और बिलारी गांव के माध्यम से करते हुए कथा संरचना करते हैं किंतु गोदान मात्र इन दो गांव की सीमा को तोड़कर भारतवर्ष के किसी भी गांव की किसान की सच्चाई का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई देते हैं शायद यही कारण होगी आज भी प्रेमचंद और उनकी रचना गोदान अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं प्रेमचंद की इसी कड़ी का उत्तर आधुनिक सच व्यक्त करने के लिए संजीव ने फांस-उपन्यास की रचना की है. उपन्यास में उपन्यासकार जरूर यह दर्शाने का प्रयास करते हैं कि किस प्रकार से छोटी-छोटी आवश्यकताओं के लिए किसान कर देता है और सरकार की नीति का शिकार बनता हुआ उसी कर्ज को चुकाने का कोई साधन प्राप्त न होने से बेबस और लाचार की जिंदगी जीता हुआ अपनी ईमानदारी और प्रमाणिकता को बनाए रखने से वही कर्ज उसके लिए फ्रांस बन जाता है.

फांस की कथा का मूल आधार महाराष्ट्र की किसानी सभ्यता का रहा है क्योंकि संजीव जी ने यह पाया कि संपूर्ण भारत वर्ष में किसान अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर रहे हैं जिसमें महाराष्ट्र अव्वल दिखाई देता है. सरकार की गलत नीति और उपेक्षा का पात्र बनता हुआ किसान दर्दनाक मौत को स्वीकार ता हुआ न तो मीडिया दिख रही है और ना ही सरकार शायद यही कारण हो कि उपन्यासकार की मानवीय संवेदना उसकी मौत को देख पाती है. फांस में महाराष्ट्र के यवतमाल जिले के बनगांव के किसान और उनका किसानी जीवन उपन्यास की कथा का मुख्य आधार रहा है. विदर्भ के किसानों की यथास्थिति का वास्तविक चित्रण संजीव करते हुए अपनी संवेदना जताते हैं फांस उपन्यास के यथार्थ की स्थिति पर स्वयं संजीव जी का मानना है कि –"यथार्थ की तह तक पहुंचने के लिए मेहनत और लगन होनी चाहिए सिर्फ अनुभव कल्पना और आग्रह के भूत सच्चाई कैसे ढूंढ पाओगे जब तक आप संवेदन तंत्र की जड़ों को नहीं टोटल लेते निष्कर्ष हमेशा गलत होगा या अधूरा."[2] संजीव जी के इसी मंतव्य से यह तथ्य प्रमाणित होता है कि वह मात्र काल्पनिक कथा का निर्माण नहीं करते बल्कि समाज जीवन की सच्चाई की जड़ तक खोजबीन करते हुए उपलब्धियों को वैचारिक धरातल पर व्यक्त करने का आधार कल्पना के सायरी ढूंढते हैं.

वैश्वीकरण के दौर में हमारे पास कृषि विशेषज्ञ तथा कृषि क्षेत्र से जुड़ी यांत्रिक ता होते हुए भी खरीदने और बेचने के जमाने में अर्थ के अभाव में उसका पीस जाना तय है फिर भी उसी पर आरोप लगाया जाता है कि किसान अपना भाग्य बदलना नहीं चाहता. जबकि सच्चाई है की उसे उसका भाग्य पहले ही पता चल चुका है. बरसात के पानी की बाढ़, जाड़े के दिनों की ठंडी और तिलआती धूप उसके जीवन सच्चाई है. फिर भी वह भाग्य बदलना नहीं चाहता. जिस अर्धसत्य के सहारे उसका जीवन मीडिया के बाजार में सरकार तथा निजी व्यवस्था दांव पर लगा रही है उसे फांसी उपन्यास की नायिका शकुन बेनकाब कर देती है- जैसे "कापूस एकदम दगा दे गया, मक्का सिर्फ नाम का जो थोड़ी उम्मीद है, वह धान से.वह भी कितनी. दो साल से सूखा है. यह तो कहो, पासी जंगल है, जिससे

सहेरा, साल के बीज, मावा, बॉस, लकड़ी आदि से कुछ ना कुछ मिल जाता है. वरना ब्राह्मणों की रहनुमाई करते बीतती.वर्षों पहले कापूस का नया ब्रिज आया तो एक आस जगी थी. वह भी साला नपुंसक निकला अब चारों तरफ निराश किसानों का एकमात्र अवलंब बचा जंगल. उस पर भी वन विभाग का नया फरमान- छूना- मत." [3]

जाहिर है कि खेत खलियान मैं आनंदित जीवन यापन करने वाला किसान कड़ी मेहनत के बाद भी जब व्यवस्था में असफल हो जाता है तो इसका जिम्मेदार कौन है. बीज उत्पादक कंपनियों में एक प्रतियोगिता जरूर है जो उसके विज्ञापन से दिखाई देती है कि क्या बीज उत्पादक कंपनियों को दोषी ठहराया जाए लेकिन कपास के फसल पर ईलियों से छुटकारा पाने के लिए कीटकनाशक का छिड़काव जरूरी है उस पर किया हुआ खर्च और फसल का हाथ ना आना कर्ज के बोझ तले फसा हुआ किसान इसी चक्रव्यूह में अभिमन्यु की तरफ हंसता ही जाता है एक और साहूकार, महाजन का चढ़ता हुआ सूद और रकम पाने के लिए बने बनाए नीतियों के चक्रों में हंसता हुआ किसान कर्ज के बोझ से अपना दम तोड़ देता है. दिखावे के लिए सरकार की बनी बनाई नई- नई योजनाएं तो आती है किंतु वह किसान किसानी जीवन की सच्चाई की धरातल पर नहीं उतरती और न हीं वह किसान का आधार बनती है.

इस तथ्य को संजीव जी के विचार स्वयं प्रमाणित करते हैं कि- "दिल्ली में बैठकर क्यों बना ली सरकार ने हमारे गांव के कायाकल्प की योजना...... क्यों जगाए सपने बीटी बीज की तरह बांझ सपने ......मर गए लोग..... हमसे पूछते, हम बताते- बड़े नहीं, छोटे छोटे सपने चाहिए गांव को...... हवाई नहीं.... धरती के गाय नहीं... बकरी... फिर उससे ऊपर दान नहीं...... पानी दान वापस ले लो...... हमें सिर्फ सीनचाई के लिए थोड़ा सा पानी दे दो"[4]

सरकार किसानों के लिए नई -नई योजनाएं दिखावे के लिए बना तो लेती है किंतु उसे अमल में लाने की नीतियों में खोट जरूर होती है. यह नीतियां या तो कागज की फाइल में बंद रहती है या कागजी कार्यवाही का मात्रा आधार रहती है वह हमेशा उचित कार्यान्वयन की मांग करती हुई किसानी सभ्यता का सपना जरूर बनती है सभी को अनाज की उपज बनाकर देशवासियों का भोजन देने वाले किसान को स्वयं भूखा रहने का दर्द जरूर देती है. उपन्यास की नायिका शकुन का यह वाक्य इस तथ्य को प्रमाणित करता है. जैसे-" इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है और कर्ज में ही मर जाता है."[5] उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास में किसान की इसी दशा को चित्रित करते समय उनके अनपढ़ और शिक्षित होने के साथ-साथ अर्थाभाव तथा गरीबी को समाज जीवन की सच्चाई के साथ उजागर किया है.

किसान प्राकृतिक संसाधनों का पुजारी होता है. वह जमीन, पानी, पेड़- पौधे तथा फसलअपनी जान से भी ज्यादा परवरिश करता हुआ नजर आता है. उसे इनकी सिंचाई के लिए मात्र पानी की आवश्यकता होती है. सरकार सिंचाई से जुड़ी अनेक योजनाएं चलाती है. किंतु यही योजनाएं उन्हें फंसाने का मात्र माध्यम बनती हुई नजर आती है .

उपन्यासकार संजीव कहते भी हैं कि-" जल हमारी प्राथमिक जरूरत है. सिंचाई के नाम पर हमें पानी नहीं, घोटाले मिले हैं."[6] वे आगे कहते भी है कि किसान की मृत्यु आत्महत्या तब होती है जब वह सरकार की नीति में आत्महत्या के लिए योग्य समझा जाता है नहीं तो उसकी आत्महत्या भी प्राकृतिक मृत्यु मानी जाती है. उपन्यासकार पाठक को सोचने समझने के लिए मजबूर करते हैं कि क्या किसान की आत्महत्या भी पात्रा और

अपात्र मानी जा सकती है......... यह इस देश का कैसा कानून है जोकि उनका मरना भी कानूनी ढंग से सही हो. क्या यही स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमने सीखा है. अंततः गोदान का होरिराम दम तोड़ कर अपनी जीवन यात्रा मिटाता है और स्वतंत्र भारत का किसान खुलेआम अपने जीवन को समाप्त कर देता है आजादी से पूर्व और आजादी के बाद किसान के जीवन में कोई बदलाव नहीं आया है उसकी मृत्यु भी आज तक इसी स्रोत को स्वीकारते हुए हो रही है जिसे किसी भी प्रकार की व्यवस्था समझने के लिए तैयार नहीं है.

उपन्यासकार संजीव फांस उपन्यास की कथा संरचना में नया प्रयोग जरूर करते हैं जोकि स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर भारतीय किसानी जीवन की सच्चाई जानने समझने के लिए पाठक में संवेदना का पुल बनाकर दिल को छूती है. उपन्यास का पूर्वार्ध यथार्थवादी है. पाठक बार-बार गोदान का होरी याद करता हुआ कथा को जरूर समझ लेता है किंतु उत्तरार्ध आदर्शवादी विचारधारा का होने से पाठक में नई चेतना संचारित करता है. शायद यही कारण हो कि नई आशा किरण निर्माण होती हुई किसानी जीवन के अंधकार को समाप्त करेगी का सपना पाठक भी बुनने लगता है.सच तो यह है कि दोनों भी उपन्यास किसान की त्रासदी को समाज के सामने उजागर करते हैं किंतु अंतर यह है कि गोदान का होरी सब कुछ सहकर मर जाता है और फांस का शिबू भी भूखे पेट ही मरा.निर्मित व्यवस्थाओं ने दोनों को भी मारा है एक की मृत्यु किसान से मजबूर होकर हुई है तो दूसरा किसान होते हुए भी चौपट होकर खुलेआम आत्महत्या कर लेता है. गोदान का हो रही दम तोड़ देता है उसकी भी जिजीविषा समाप्ति हुई थी और शिबू की भी समाप्ति हुई है. हम कह सकते हैं कि गोदान से अभिव्यक्त किसानी सभ्यता के विकास की अगली कड़ी फांस है. उपन्यासकार संजीव का मानना भी है कि पूरी दुनिया बदल चुकी है किंतु किसान में कोई बदलाव दिखाई नहीं देता और ना ही वह अपनी किसानी सभ्यता से दूर जाना चाहता है.- स्वयं उन्हीं के शब्दों में...." शेती कोई धंधा नहीं, बल्कि एक लाइफस्टाइल है- जीने का तरीका. जिसे किसान अन्य किसी भी धंधे के चलते छोड़ नहीं सकता. जो तुम बाबा...... तुम लाख कहो की तुम शेती छोड़ दोगे, नहीं छोड़ सकते. किसानी तुम्हारे खून में है."[7] उपन्यासकार के इन्हीं विचारों से यह स्पष्ट होता है कि किसान अपनी माटी से बिछड़ना नहीं चाहता और नहीं जमाने के साथ बदलना. शायद उसकी यही ईमानदारी और प्रमाणिकता संबल होते हुए भी बे सबब मृत्यु का कारण बन जाती है.

देशभर विकास के अनेक मॉडल बनाए जाते हैं. किसानी सभ्यता के विकास के लिए सरकार जो भी नए मॉडल बनाती हैं वही उसके तबाही का माध्यम बन जाती है. फांस- उपन्यास में वर्णित गाय के उदाहरण द्वारा इसे स्पष्टता मिलेगी. उपन्यास की नायिका शकुन के इस वाक्य से सरकारी व्यवस्था की धज्जियां उड़ा दी है.- जैसे- " अरे यह मन मोहिनी गाय है. अम्मा प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने दिया, सो मनमोहिनी गाय. 20-20 सेर दूध देने वाली. कायदे से खिलाओ तो एक मन. "[8] महाराष्ट्र सरकार द्वारा किसानों को सरकारी बैंक के द्वारा कर्ज पर दी जाने वाली गाय का उदाहरण किसानी जीवन की दर्दनाक दास्तान को व्यक्त करती है. जिन किसानों को खाने के लिए रोटी नहीं है वह अपनी गाय को क्या खिलाएंगे चारों ओर सूखा ही सूखा है और इतना घास कहां से खरीद पाएंगे....सरकारी योजना से प्रणित कल से खरीदी हुई गाय कौड़ी के दाम में बेचने पर मजबूर होता है किसान और कर्ज चुकाने में जुड़ा हुआ .....रह जाता है खामोश. फिर लोग कहते हैं-" एकदम बुद्धू है, सरकार. गाय बड़े-बड़े सीटों को देना चाहिए जो उसे खिला सके, पिला सके. हमारे लिए तो बकरी ही भली जो खुद चड़के चली आती." [9]

है ना कमाल की बात, जो चाहिए वह सरकार नहीं देती और जो नहीं चाहिए वह माथे मार देती है. किसान का भोलापन सरकारी व्यवस्था का शिकार बन जाता हैऔर अंत में वही भोलापन उसे लालच के जंगल में फसा देता है क्या वाकई सरकारी यही नीतियां होती है. इसी सिलसिले में प्रेमचंद शर्मा कहते भी है कि-" फांस खतरे की घंटी भी है और आत्महत्या के विरुद्ध हृदय आत्मबल प्रदान करने वाली चेतना और संजीवनी का संकल्प भी....."[10] फांस उपन्यास किसान की आत्महत्या का भयावह रूप दिखाकर समाप्त नहीं होता बल्कि किसानी सभ्यता से जुड़ी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा वैज्ञानिक सच्चाई पर प्रश्नचिन्ह भी निर्माण करता है. समकालीन मानवीय जीवन की व्यस्तता में फांस उपन्यास पाठक को सोचने के लिए मजबूर करता है व्यवस्था के प्रशासनिक अधिकारी तथा राजनेता अनेक मामले में अपना वास्तविक चेहरा दिखाते हैं फिर भी भोला भाला किसान ही दोषी पाया जाता है और मृत्यु का शिकार भी. पाठक अंत में सरकार के बने बनाए नियमों को तोड़ता हुआ अन्याय अत्याचार से भरी हुई शोषण विरहित सरकारी नीतियों की मांग करता हुआ किसानी सभ्यता के न्याय मांगता हुआ दिखाई देता है.उपन्यास में प्रस्तुत किसानी जीवन का चित्रण मात्र महाराष्ट्र के यवतमाल के बनगांव की कथा नहीं तो वह संपूर्ण भारत भर के किसानी सच्चाई का प्रतिनिधिक आधार बनती है .

संदर्भ संकेत

1.ज्ञानचंद्र गुप्त,स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृष्ठ-23

2. संजीव, कुछ तो होना चाहिए, पृष्ठ-89

3. संजीव, फांस, पृष्ठ-36

4. संजीव, फांस, पृष्ठ-72

5.संजीव, फांस, पृष्ठ-15

6.संजीव, फांस, पृष्ठ-250

7.संजीव, फांस, पृष्ठ-17

8.संजीव, फांस, पृष्ठ-67

9.संजीव, फांस, पृष्ठ-71

10संजय नवले, किसान आत्महत्या: यथार्थ और विकल्प, पृष्ठ-15